सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वत्त्वबोध और भारतेन्दु का साहित्य

डॉ० प्रतिभा प्रसाद[२९]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक समूचे उत्तर भारत में सामाजिक सांस्कृतिक नवजागरण का मंत्र गुँजित होने लगा। पहली बार भारतवासियों को देश की पराधीनता का अहसास हुआ। १८५७ की क्रांति भारतीय-राष्ट्रीय-जातीय संग्राम के रूप में हिन्दी भाषी जनता को सर्वाधिक प्रभावित कर गया। रानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के मोह जाल की असलियत एवं शोषणवृत्ति का पर्दाफॉश हो गया। अंग्रेजी नीतियों के विरूद्ध साधारण जनता को जागृत करने वालों में भारतेन्दु और उनके समकालीन रचनाकारों का स्थान अग्रगण्य है। अतः भारतेन्दु के साहित्यागमन को हिन्दी साहित्य में नये युग के प्रवर्त्तन का युग माना जाता है। इसका कारण उनके व्यक्तित्व की विलक्षणता तथा मानसिक प्रौढ़ता थी। वे न सिर्फ साहित्यिक ज्ञान से भरपूर थे बल्कि उन्हें सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक-सभी तत्कालीन परिस्थितियों का अपरिमित ज्ञान था। यही कारण है कि वे सामान्य जनता के ह्दय में प्रवेश कर पाने की अद्‌भुत क्षमता रखते थे। उन्होंने अपने ज्ञान से साधारण जनता को प्रभावित किया। आ० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार- ''उन्होंने साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और उसे वे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नई शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चली थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नई उमंगे उत्पन्न हो रही थी।''[1] (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०-३०६) भारतेन्दु ने साहित्य को सीधे समाज से जोड़ा। उन्होंने यह सिद्ध किया कि यह समाज के विशिष्ट समुदायों का संस्कार तो करती है, परन्तु आम जनता को वृहत् पैमाने में प्रभावित कर सकने का सामर्थ्य रखती है। यही कारण है कि उन्होंने राष्ट्रीय तथा सामजिक-सांस्कृतिक पक्षों को अपने साहित्य का विषय बनाया तथा भाषा को परिष्कृत-परिमार्जित कर सामान्य जन-जीवन के स्तर तक ले जाने का अक्षुण्ण प्रयास किया। जिस कारण उनका साहित्य आगे आने वाले साहित्य के लिए जीवंत उदाहरण बन गयी। डॉ० रामविलास शर्मा के कथनानुसार- ''भारतेन्दु ने अपनी जमीन की तलाश भी स्वयं की थी। वे परम्परा के समर्थक थे। वह उन भक्त कवियों से प्रभावित थे जो अपने समय के राजाओं-महाराजाओं की प्रशस्ति से हटकर भक्ति के माध्यम से जनता तक पहुँच रहे थे और आज भी भारत समाज में जिनका स्थान अत्यन्त ऊँचा है।''[2] (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ०-४७) इस मन्तव्य के पीछे भारतेन्दु के साहित्य के भीतरी परतों में छिपे सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना के रूप में व्याप्त देशप्रेम, स्वदेश प्रेम, सांस्कृतिक वैभव, नारी समानाधिकार की मजबूत जड़ों को देखा जा सकता है। उन्होंने साहित्य को उच्चवर्ग, सम्भ्रांत वर्ग की निजी सम्पत्ति से निकालकर, जन-जन के लिए सर्वसुलभ बनाया। भारतेन्दु ने अपने साहित्य के माध्यम से न सिर्फ भाषा को जनमानस से जोड़ा बल्कि भाषा को आधार बनाकर अपने नाटकों, कविताओं, पत्र-पत्रिकाओं, प्रहसनों, गजलों आदि को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परिपेक्ष्यों से

[29] कुल्टी कॉलेज, (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग), कुल्टी (प० बंगाल), (मोबाईल : ०९२३२४७३०८३)

जोड़कर स्वत्त्व के बोध से जनमानस को अवगत करवाया। पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित अंग्रेजी भाषा को कतई स्वीकृत न देते हुए उन्होंने 'निज भाषा' के महत्व को स्वीकार किया। उनकी भाषा के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त ही सहज थी। उन्होंने भाषा रूपी तीक्ष्ण औजार को स्वीकार कर अपनी व्यंग्यात्मक किन्तु चुस्त-दुरुस्त-विनोदपूर्ण धारदार भाषा को माध्यम बनाकर अपने साहित्य को सामान्य जनता के लिए ग्राह्य बना दिया। उनमें नवचेतना का आग्रह भर दिया। जो भारतेन्दु के साथ-साथ साधारण मानव-समुदाय के लिए भी जातीय-बोध के रूप में उभरकर सामने आया। ''निज भाषा उन्नति अहै सब भाषा को मूल'' कहकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के मूलमंत्र द्वारा भारतीय जनता को आत्मबल प्रदान किया। आगे वे भारतवासियों के भ्रम का निराकरण यह स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं

''अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन,

पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।''[3] (भारतेन्दु ग्रंथावली, पृष्ठ-६९३)

वे स्पष्ट शब्दों में सभी भारतवासियों को यह बतला देते हैं कि हम चाहे अंग्रेजी पढ़कर स्वयं को कितने ही प्रवीण माने, परन्तु स्वयं की भाषा ज्ञान के बिना हम हीन के समान है। उनका यह भाषा प्रेम उनकी राष्ट्रभक्ति, राजभक्ति या राष्ट्रप्रेम का ही परिचायक है। भारतेन्दु ने अपने लेखन को सफल बनाने के लिए मानव जीवन का गहन अध्ययन किया। नवीन और उर्ध्वगामी समझ को सहज ही आत्मसात किया और पुरातन, निम्नगामी प्रवृत्तियों को त्याज्य मानकर; एक स्वस्थ दृष्टिकोण को ग्राह्य बनाकर साहित्य की सेवा की। यही कारण है कि साहित्य की कोई भी विधा उनकी प्रखर लेखनी से वंचित न रह सकी। उन्होंने भले ही भाषा के परिमार्जित रूप खड़ी बोली का प्रयोग गद्य के क्षेत्र में किया और पद्य को बिना किसी रोक-टोक के ब्रजभाषा के अधीन ही रहने दिया हो, इसमें उनकी इस भाषा की लम्बी और सुदृढ़ परम्परा की विशाल विरासत को उन्होंने स्वीकृति प्रदान की, परन्तु गद्य में इस परम्परा को स्वीकार करना उन्हें मांन्य नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया में समग्र बदलाव एक साथ आना सम्भव नहीं था। तत्कालीन समय में आत्मभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वच्छंद व्यक्ति के मन के भीतर की कल्पना थी। इस भीतरी कल्पना को भारतेन्दु ने अपने साहित्य के माध्यम से वाणी प्रदान की। उन्होंने जहाँ राष्ट्र विरोधी बातों को खारिज किया, वहीं राष्ट्र एकता को राष्ट्रनिर्माण का सम्बल स्वीकार किया-

''इक भाषा इक जीव इक, मति सब घर के लोग,

तबै बनत है सबन, सौ मिटत मूढ़ता सोग

भारत में सब भिन्न अति, ताही सौ उत्पात,

विविध देश मतहु विविध भाषा विविध लखात।''[4]

(हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ- डा० जयकिशन प्रसाद, पृ०-३१५)

भारतेन्दु ने सर्वप्रतम एक भाषागत साम्य स्थापित करने के लिए जीवनपर्यन्त कष्टों को सहा। तब जाकर हिन्दी भाषा के संस्कार की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ।

उन्होंने सर्वप्रथम अपने भाषागत संस्कारों के द्वारा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से नवजागरण का शंखनाद किया। वे निर्भीक पत्रकार थे। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के द्वारा समाज में व्याप्त असामाजिक कार्यों का पूरजोर विरोध किया। अंग्रेजी शासन और अंग्रेजी शिक्षा

नीतियों के दुष्परिणामों से भारतवासियों को अवगत करवाया। संवत् १९२४ में प्रकाशित 'कविवचन सुधा' के माध्यम से उन्होंने साहित्य सेवियों को भाषा साहित्य और सांस्कृतिक-राष्ट्रीय अस्मिता का पाठ पढ़ाया। अंग्रजों के शोषण के विरूद्ध आवाज उठायी। निज भाषा को अपनाकर न सिर्फ अपना बल्कि समस्त भारतवासियों के उत्थान की बात कही। सामाजिक सद्भाव, देशी उद्योग तथा रूढ़ियों के अंत का उन्होंने लोगों को पाठ पढ़ाया। अतः कविवचन सुधा' उनकी प्रखर बौद्धिकता का परिचायक बनाकर सामने आया। उनकी बौद्धिकता से संशय ग्रस्त होकर अंग्रेजों की ओर से उसपर प्रतिबंध लगा दिया। गया। इस प्रतिबंध से भारतेन्दु आहत तो जरूर हुए किन्तु डरे नहीं; उन्होंने इसके माध्यम से अपनी लड़ाई जारी रखी। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में- ''कविवचन सुधा जनता के हितों के लिए लड़ने वाले निर्भय सैनिकों की तरह थी। उसने अंग्रेजी राज्य में जनता के शोषण की सच्ची तस्वीर खींची। उसने अंग्रेजों के न्याय, जनतंत्र और उनकी सभ्यता का पर्दाफाश किया। उसने देश के औद्योगीकरण और शिल्प की शिक्षा के लिए संघर्ष किया। अपने प्रांत में हिन्दी के चलन के लिए और राज काज में उसके व्यवहार के लिए उसने शक्तिशाली आंदोलन किया। देश विदेश के जीवन से उसने हिन्दी भाषियों को परिचित कराया। संकीर्ण जातीयता के भाव उसे छू न गए थे।''[5] (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृ०-६२) इसी तरह १८७३ में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका) १८८४ में 'बाल-बोधिनी' का सम्पादन किया। हरिश्चन्द्र मैगजीन के माध्यम से अंग्रेजी शासन नीतियों के विरूद्ध लड़ाई छेड़ दी। अंग्रेज शासनाधीशों के सामने अनेकानेक प्रश्नों की झड़ी लगा दी। इस पत्रिका के प्रकाशन के पहले हिन्दी भाषा का कोई सर्वमान्य स्वरूप नहीं था। भारतेन्दु ने इसमें हिन्दी गद्य को अभिनव स्वरूप प्रदान किया। यह भी एक अर्थ में भारतीय सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वत्वबोध का परिचायक बना। 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका महिलापयोगी होकर पहली बार प्रकाश में आयी। अतः भारतेन्दु ने भारतीय सांस्कृतिक परिवेश को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास किया। अलका पाण्डेय के मतानुसार- ''भारतेन्दु जी के पत्रों के प्रकाशन का अर्थ था दूसरों की समस्याओं में साझीदार बनना और उनके लिए नई वैचारिक भूमि तैयार करना। ये पत्र-पत्रिकाएँ एक ओर जनतांत्रिक भावनाओं का पोषण कर रही थी, दूसरी ओर समाज की रूढ़ियों पर प्रहार करके राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान कर रही थी।''[6] (भारतेन्दु और आधुनिक हिन्दी की चुनौतियाँ- सं० डॉ० बलबीर सिंह, पृ०-२६७) पत्रिकाओं की भाँति नाटक, एकांकियों के माध्यम से भारतेन्दु ने राष्ट्रीय चेतनता को जाग्रत करने का प्रयास किया। उन्होंने अनूदित और मौलिक-दोनों प्रकार के नाटकों का लेखन किया। परन्तु उनके मौलिक नाटक सामाजिक कुरीतियों, धर्माडम्बरों तथा शोषण के विरूद्ध राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को लेकर हमारे समक्ष उपस्थित हुआ। 'भारतदुर्दशा, अंधेरनगरी', वैदिकी हिंसा हिसा न भवति' नीलदेवी, 'सतीप्रताप', 'विषस्य विषमौधम' नाटक। नाटकों का प्रणयन कर समाज को जगाने का कार्य किया। उनके 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक सामाजिक समस्याओं को उभारकर राष्ट्रीय भावना का प्रचार तथा आत्मबोध के गौरव से भारतीय जनता को भरने का सार्थक प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि इसे प्रभावित होकर बंगला में 'नीलदर्पण' तथा मराठी में 'कीचक-वध' जैसे कृतियों का लेखन हुआ। अंधेरनगरी में परतंत्र भारत पर अंग्रेजी प्रशासन की अंधेरगर्दी का चित्रण मिलता है। जहाँ न्याय जैसी कोई चीज नहीं थी। कुव्यवस्थाओं ने अपने पाँव पसार लिये थे। इसमें

आने वाले प्रहसन अंग्रेजों के वास्तविक चेहरे को हमारे समक्ष उपस्थित कर देते हैं। इस प्रकार वे युगद्रष्टा के साथ-साथ युगस्रष्टा भी थे। उन्होंने कहीं मीठे व्यंग्य तो कहीं कडुवे-तीखे व्यंग्य द्वारा समाज तथा व्यक्ति को संस्कारित करने का अचुक प्रयास किया। सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों तथा राष्ट्रीय गौरव से परिपूर्ण उनके प्रहसन राष्ट्रीय नवनिर्माण के लिए जनसाधारण को तैयार करता है।

नाटकों-प्रहसनों की भाँति उन्होंने अपने गजलों के माध्यम से भी सांस्कृतिक मूल्यों को बचाए रखने तथा उसकी उपयोगिता सिद्ध की है। वे अपने राष्ट्रीय प्रेम की गजलों को 'रसा' नाम से लिखते थे। उनकी गजलों की भाषा कविताओं की भाषा से अधिक मंजी हुई तथा व्यवस्थित दिखाई देती थी। इसका कारण यह था कि १९वीं शताब्दी तक उर्दू 'गज़ल' की एक लम्बी और सुव्यवस्थित, सुदृढ़ परम्परा चली आ रही थी। भारतेन्दु ने उसी का अंधानुकरण न कर एक मौलिक रचनाकार की भाँति अपने गजलों में राष्ट्रीय नवजागरण की चेतना द्वारा भारतीय जनमानस में स्वत्व का बोध करवाया। उन्होंने गजलों को नए तत्त्वों से अभिभूत किया जिससे उनके गजल एक लोकप्रिय काव्य माध्यम के रूप विकसित होकर सामान्य जनता तक पहुँच गयी। उन्होंने गजलों के साथ-साथ 'बिरहा', लावनी, मुकरियों को भी अपने काव्य में स्थान देकर राष्ट्रीयता की भावना को प्रसारित किया। उर्दू की गजल जहाँ उच्चवर्ग तथा सुशिक्षित समुदाय को ध्यान में रखकर लिखी गयी, वहीं भारतेन्दु के गजल सामान्य जन तक पहुँच सकी। उनकी अधिकतर गजलें उनके नाटको में स्थान पाती है। उनमें एक खास प्रकार की रवानगी दिखाई देती है-

''दोस्तों कौन मेरी गुर्बत पर रो रहा है रसा रसा करके'' 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक में व्यंग्य के माध्यम से भारतीय समाज को जगाने की चेष्टा करते हुए उनकी एक गजल इस प्रकार है- सिजदे में गर बहिश्त मिले दूर कीजिए दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा।''[7] (भारतेन्दु समग्र, पृ०-४६५) उन्होंने अपनी काव्यकृतियों के माध्यम से सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चेतना को महत्त्व प्रदान किया। उनके नाटकों में नवीन तत्त्वों के समावेश के साथ-ही भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल तत्वों को भी स्थान दिया है। 'नाटक' नामक निबंध में 'देश वत्सलता' के रूप में अपनी विचारधारा का अंत करते हैं तथा राष्ट्रीय भावना को सम्बल प्रदान किया है। राष्ट्रवादी लेखक देश की उन्नति और उसके अवरोधक तत्व की भर्त्सना करते हैं। उन्होंने भारतीय जीवन को सम्पूर्णता में समाज है। वे सांस्कृतिक और आर्थिक विकास के मार्ग में अवरोधक वाली धार्मिक प्रवृत्तियों का विरोध करते हैं-

''धिक-धिक ऐसे धरम जो हिंसा करत विधान।
धिक्-धिक् ऐसे स्वर्ग जो बध करिमिलत महान।।''[8]

(भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ०-६९२)

भारतेन्दु अपनी कविताओं में सामाजिक यथार्थ और कलात्मक प्रक्रिया के माध्यम से राष्ट्रीयता के स्वत्व विवेक से भारतवासियों को सचेष्ट करने का प्रयास करते हैं। अतीत की गौरवशाली परम्परा और समृद्ध सांस्कृतिक उपादानों की चर्चा कर उन्होंने सांस्कृतिक जनजागरण किया है-

''भारत भुजबल लहि जग रच्छित

भारत विधा सों जग सिंचित।

रहे गढ़ै मनि क्रीट सुकुंडल।

रह्यौ दंड जम प्रबल अखंडल।''[9] (भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ०–८०२)

उस समय की परिस्थितियों और तत्कालीन परिवेश को ध्यान में रखकर भारतेन्दु ने सांस्कृतिक आदर्शो को अपनी साहित्यिक उपलब्धियों में स्थान दिया है। यही कारण है कि ''एक तरफ परिष्कृत आतंकवाद तथा छद्म सुधारवाद, दूसरी तरफ भारतीय जनता ठोस आकार ढूँढती, क्रांतिकारी अकुलाहट– इन्हीं परिस्थितियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कंधों पर जनता को साहित्य तक और साहित्य को जनता तक पहुँचाने का एक महान ऐतिहासिक दायित्व आया। उनकी सुधार की चेतना वस्तुतः एक परिवर्तन ढूँढती थीं। इसी दबाव में उन्होंने अंग्रेजी राज के दमन चक्र को देखते हुए सहज मिथकीय संकेतों तथा प्रहसनात्मक फंतासियों का मार्ग अपनाया। औपनिवेशिक व्यवस्था को पूरी तरह उघाड़ने के उद्देश्य से ही उन्हें विक्टोरिया प्रेम का कौशल अपनाना पड़ा, जिसे राजभक्ति कहना गलत होगा।''[10] (भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, पृ०–२०६) अतः भारतेन्दु ने विभिन्न साहित्यिक माध्यमों को अपनाकर भारतीय सांस्कृतिक–राष्ट्रीय स्वत्वबोध की भावना से जनता को अवगत करवाया। भारतेन्दु ही नहीं, उस युग के सभी रचनाकारों ने इसी अवधारणा को अपनाकर साहित्य एवं समाज की सेवा का प्रण लिया। संस्कृति की अक्षण्णता बनाए रखने के लिए भारतेन्दु तथा उनके मण्डल ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसकी आधारशिला भारतेन्दु ने ही रखी। भारतेन्दु का सम्पूर्ण साहित्य उनके विचारों का वाहक बनकर भारतीय राष्ट्रीय सांस्कृतिक महत्व का निरूपण किया।